सुंदर सिंह, आदि बनाम सेंट्रल को-ऑपरेटिव बैंक लिमिटेड, करनाल, आदि। (पंडित, जे.)

अपीलीय सिविल

पी. सी. पंडित और बी. एस. ढिल्लों से पहले, जे.जे.

सुंदर सिंह, आदि,---------- —---अपीलकर्ता।

बनाम

सेंट्रल को-ऑपरेटिव बैंक लिमिटेड, करनाल, आदि, -------------------प्रतिवादी।

1966 की ई.एफ.ए. संख्या 154

25 जनवरी 1973.

पंजाब सहकारी सोसायटी अधिनियम (1961 का XXV) - धारा 55, 56 68 और 82 - सहकारी बैंक एक सहकारी सोसायटी को संपत्तियों के बंधक पर और ज़मानतदारों की गारंटी पर ऋण देता है जो सोसायटी के सदस्य भी हैं - सोसायटी और ज़मानतदारों दोनों द्वारा ऋण के भुगतान के संबंध में पूरा विवाद मध्यस्थता के लिए भेजा गया है - इस तरह के संदर्भ - क्या बैंक और ज़मानत के लिए वैध है - ज़मानत को नहीं सुना गया और पुरस्कार दिया गया - क्या अधिकार क्षेत्र के बिना पुरस्कार दिया गया है।

सुंदर सिंह, आदि बनाम सेंट्रल को-ऑपरेटिव बैंक लिमिटेड, करनाल, आदि। (पंडित, जे.)

यह माना गया कि जहां एक सहकारी बैंक किसी सहकारी समिति को उसकी संपत्तियों के बंधक के साथ-साथ ज़मानतदारों द्वारा दी गई गारंटी के विरुद्ध ऋण देता है, जो सोसायटी के सदस्य भी हैं, ऋण के भुगतान के संबंध में विवाद सोसायटी के लिए भी अविभाज्य है। ज़मानत के रूप में. इस विवाद को विभाजित नहीं किया जा सकता क्योंकि इससे असंगत परिणाम होंगे। इसमें कोई संदेह नहीं है कि मध्यस्थ बैंक और सोसायटी के बीच विवाद का फैसला कर सकता है और यदि बैंक के बीच विवाद का फैसला करने के लिए सिविल कोर्ट को बुलाया जाता है और ज़मानत, इसके परिणामस्वरूप दो विरोधाभासी क्रम होने की संभावना है। यदि पूरे विवाद के संबंध में अंतिम निर्णय दिए जाने के बाद मामले को बैंक और जमानतदारों के बीच सिविल कोर्ट में जाने की अनुमति दी जाती है, तो वही प्रश्न जो मध्यस्थ द्वारा तय किए गए थे, सिविल कोर्ट के समक्ष फिर से उठेंगे। इसका परिणाम यह है कि दो असंगत आदेशों की संभावना है, एक मध्यस्थ द्वारा और दूसरा सिविल न्यायालय द्वारा। कानून या हाइपोथिकेशन डीड के निष्पादकों की ऐसी मंशा नहीं हो सकती। यह कल्पना करना संभव नहीं है कि एक बंधक विलेख के आधार पर, दो विवाद उत्पन्न हो सकते हैं, एक बैंक और सोसायटी के बीच और दूसरा बैंक और ज़मानतदारों के बीच। इसलिए बैंक और सहकारी समिति के बीच ऋण के भुगतान के साथ-साथ विशेष रूप से ज़मानत के संबंध में विवाद को कानूनी रूप से पंजाब सहकारी समिति अधिनियम 1961 की धारा 55 के तहत मध्यस्थता के लिए भेजा जा सकता है, ऐसा संदर्भ कानून में मान्य है।

निर्णय दिया गया कि पुरस्कार देने से पहले मध्यस्थ द्वारा उनकी बात न सुने जाने पर जमानतदारों की आपत्तियां केवल अधिनियम की धारा 68 के तहत पुरस्कार के खिलाफ अपील में उठाई जा सकती हैं। अपील दायर करने में विफल रहने पर, उनके लिए निर्णय अंतिम हो जाता है। अधिनियम की धारा 82 के आधार पर, अधिनियम के तहत दिए गए किसी भी आदेश, निर्णय या पुरस्कार पर किसी भी आधार पर सिविल न्यायालय में सवाल नहीं उठाया जा सकता है। जमानतदारों की आपत्तियों को न सुने जाने से निर्णय क्षेत्राधिकार के बिना नहीं हो सकता। किसी पक्ष की अनुपस्थिति में और उसे सुने बिना दिया गया आदेश रद्द करने योग्य होता है, शून्य नहीं। इसे रद्द किया जाना चाहिए या अलग रखा जाना चाहिए।' यह तब तक प्रभावी रहेगा जब तक कि जानकारी के बाद पीड़ित पक्ष इसे कानून के अनुसार हटा नहीं देता।

कानून के एक महत्वपूर्ण प्रश्न के निर्णय के लिए माननीय श्री न्यायमूर्ति गुरदेव सिंह द्वारा दिनांक 1 दिसंबर, 1969 के आदेश के तहत मामले को एक बड़ी पीठ के पास भेजा गया, जिसमें माननीय न्यायाधीश शामिल थे।

श्री न्यायमूर्ति प्रेम चंद पंडित और माननीय श्री न्यायमूर्ति भोपिंदर सिंह ढिल्लों ने अंततः 25 जनवरी, 1973 को मामले का फैसला किया। श्री हरबंस सिंह, वरिष्ठ उप-न्यायाधीश, करनाल की अदालत के 22 जनवरी, 1966 के फैसले से निष्पादन प्रथम अपील, आपत्तियों को लागत के साथ खारिज कर दिया।

अपीलकर्ताओं की ओर से अधिवक्ता पी.एस. जैन और वी.एम. जैन।

प्रतिवादियों की ओर से डी.एन. अग्रवाल, अधिवक्ता, बी.एन. अग्रवाल, अधिवक्ता के साथ।

सुंदर सिंह, आदि बनाम सेंट्रल को-ऑपरेटिव बैंक लिमिटेड, करनाल, आदि। (पंडित, जे.)

निर्णय

पंडित, जे - लाडवा हीरा गुड्स ट्रांसपोर्ट कोऑपरेटिव सोसायटी, लाडवा, जिला करनाल, जिसे इसके बाद सोसायटी के रूप में जाना जाएगा, के अनुरोध पर, केंद्रीय सहकारी बैंक, करनाल, जिसे इसके बाद बैंक कहा जाएगा, सीमा तक ऋण देने के लिए सहमत हो गया। सोसायटी को 30,000 रुपये इस शर्त पर दिए जाएंगे कि वह बैंक के पक्ष में एक ज़मानत बांड के साथ एक हाइपोथिकेशन डीड निष्पादित करे और इस तरह ज़मानतदारों और सोसायटी की चल और अचल संपत्ति को गिरवी रखे। सोसाइटी फिलहाल 27,000 रुपये का ऋण लेना चाहती थी, जिसमें से रु. 5,000 रुपए वह पहले ही ले चुका था और बाकी रकम उसने 5,000 रुपए ले ली थी. 22 हजार बाद में मिलने थे। कहा गया कि रुपये बाकी हैं. जरूरत पड़ने पर बैंक से 3,000 रुपये मिल जायेंगे. इस ऋण को प्राप्त करने के लिए, सोसायटी ने अपने माध्यम से 18 अप्रैल, 1956 को एक पंजीकृत हाइपोथीकेशन डीड निष्पादित की। अध्यक्ष पियारा सिंह. उक्त दस्तावेज़ में, पियारा सिंह के साथ-साथ दो अन्य ज़मानतदार, जो सोसायटी के सदस्य भी थे, ने विलेख में निर्दिष्ट अपनी संपत्तियों को बिना कब्जे के गिरवी रख दिया, जिस पर उनके द्वारा हस्ताक्षर भी किए गए थे। सोसायटी की संपत्ति के संबंध में, जिसे गिरवी रखा जाना था, यह कहा गया था कि - "उक्त ऋण राशि से खरीदे गए सभी ट्रक आदि और सोसायटी के अन्य पूर्ण ट्रक या अन्य संपत्ति, जो उसने खरीदी थी, उपरोक्त बैंक के पास बंधक रहेगा और खरीदे गए ट्रकों का व्यापक बीमा कराया जाएगा और सोसायटी के बीमा अधिकार भी बैंक के पास बंधक रहेंगे। 'डीड में यह भी उल्लेख किया गया था कि उसके निष्पादकों ने संयुक्त रूप से और अलग-अलग घोषणा की थी कि यदि सोसायटी, जो मुख्य देनदार थी, ने बैंक के नियमों और हाइपोथेकेशन डीड की शर्तों के अनुसार राशि का भुगतान नहीं किया, और साथ ही क्षति और लागत जैसा कि विलेख के खंड 4 में बताया गया है! या इसके भुगतान से परहेज किया, तो बैंक व्यक्तियों से खंड में बताए गए ब्याज, लागत और क्षति के साथ उक्त राशि की वसूली करने का हकदार होगा और साथ ही निष्पादक संख्या 1 से 6, ज़मानतदारों की चल और अचल संपत्तियों को भी गिरवी रख देगा। , "मुख्य देनदार सोसायटी से इसकी वसूली के लिए कोई कदम उठाए बिना।"

(2) हाइपोथिकेशन डीड के आधार पर ऋण लेने के बाद, ऐसा प्रतीत होता है कि ऋण के लिए कुछ भुगतान सोसायटी द्वारा बैंक को किया गया था, लेकिन बाद में सोसायटी से कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ।

सुंदर सिंह, आदि बनाम सेंट्रल को-ऑपरेटिव बैंक लिमिटेड, करनाल, आदि। (पंडित, जे.)

इसलिए, सोसाइटी और बैंक के बीच एक विवाद उत्पन्न हुआ, जिसे सहकारी समितियों के रजिस्ट्रार द्वारा एक मध्यस्थ के पास निर्धारण के लिए भेजा गया था, - उनके आदेश दिनांक 25 अक्टूबर, 1960 द्वारा, स्पष्ट रूप से पंजाब सहकारी समिति की धारा 55 के तहत। ऑपरेटिव सोसायटी अधिनियम, 1961, जिसे इसके बाद अधिनियम कहा जाएगा। 22 दिसम्बर, 1961 को मध्यस्थ ने निम्नलिखित निर्णय दिया:-

"जबकि करनाल सेंट्रल को-ऑपरेटिव बैंक लिमिटेड, करनाल और लाडवा हीरा गुड्स ट्रांसपोर्ट सोसाइटी लिमिटेड के बीच विवाद का निम्नलिखित मामला रजिस्ट्रार के आदेश, दिनांक 25 अक्टूबर, 1960 द्वारा निर्धारण के लिए मेरे पास भेजा गया है, मैं इस मामले पर विधिवत विचार करते हुए निर्देश दिया गया है कि उक्त लाडवा हीरा गुड्स ट्रांसपोर्ट सोसाइटी लिमिटेड, उक्त करनाल सेंट्रल कोऑपरेटिव बैंक लिमिटेड, करनाल को रुपये की राशि का भुगतान करेगी। मूलधन के साथ 14,736.87 रु. 30 जून, 1961 तक ब्याज 929.57 और लागत रु. 1,566.56 या रु. कुल मिलाकर 17,230 रुपये, जिसमें मूल राशि की प्राप्ति तक 6 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से ब्याज शामिल है, अर्थात। 15,19900 उपरोक्त राशि का भुगतान लाडवा हीरा गुड्स ट्रांसपोर्ट सोसायटी लिमिटेड द्वारा किया जाएगा। यदि भुगतान नहीं किया गया है, तो राशि सिविल कोर्ट के माध्यम से या तो सोसायटी की सभी संपत्ति की बिक्री से प्राप्त की जा सकती है, जिसे विशेष रूप से गिरवी रखा गया था। इस ऋण की संतुष्टि और जिसे इस पुरस्कार से जुड़ी अनुसूची में, या सोसायटी या उसके सदस्यों से संबंधित किसी अन्य संपत्ति या सोसायटी के सदस्यों की गिरफ्तारी से विस्तार से दर्शाया गया है। पुरस्कार बैंक प्रतिनिधि, बैंक प्रबंधक, सोसायटी के अध्यक्ष के अनुपस्थित रहने पर उनकी उपस्थिति में दिया गया। यदि पुरस्कार के अभियोजन के बिना भुगतान किया जाता है तो कोई लागत नहीं वसूली जानी चाहिए।

(3) लेकिन उक्त पुरस्कार दिए जाने से पहले, 30 अप्रैल, 1959 को, सोसायटी के सदस्य करतार सिंह, सुंदर सिंह और मोहिंदर सिंह, जिन्होंने विलेख पर हस्ताक्षर किए थे, ने अपने शेयर ज्ञानी मान सिंह और अन्य को हस्तांतरित कर दिए और यह है कहा कि इसलिए उनके नाम सोसायटी की सदस्यता से हटा दिए गए हैं। 26 दिसंबर, 1962 को बैंक ने अधिनियम के प्रावधानों के तहत सिविल कोर्ट में पुरस्कार के निष्पादन के लिए पहला आवेदन दायर किया। एक मध्यस्थ द्वारा दिया गया निर्णय एक डिक्री के समान होता है। हालाँकि, उसे रिकॉर्ड रूम में भेज दिया गया था। इसके बाद बैंक ने फरवरी, 1964 में इसी उद्देश्य के लिए दूसरा आवेदन दायर किया और 11 मार्च, 1964 को सोसायटी परिसमापन में चली गई।

सुंदर सिंह, आदि बनाम सेंट्रल को-ऑपरेटिव बैंक लिमिटेड, करनाल, आदि। (पंडित, जे.)

निष्पादन के दौरान, यह कहा गया कि 18 अप्रैल, 1956 के विलेख द्वारा गिरवी रखी गई संपत्ति को सोसायटी के खिलाफ बैंक के डिक्री में संलग्न किया गया था। जुलाई, 1964 में, करतार सिंह, सुंदर सिंह और मोहिंदर सिंह ने सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 60 के साथ पढ़ी जाने वाली धारा 47 के तहत उनके खिलाफ निकाले गए पुरस्कार के निष्पादन के खिलाफ आपत्तियां दायर कीं और कहा कि उनकी संपत्ति उत्तरदायी नहीं थी। कुर्क किया जाए या बेचा जाए क्योंकि डिक्री उनके विरुद्ध निष्पादन योग्य नहीं थी। उनकी आपत्तियाँ अन्य बातों के साथ-साथ यह थीं कि वे 30 अप्रैल, 1959 से, यानी पुरस्कार से दो साल पहले, सोसायटी के सदस्य नहीं रहे थे, और उसके बाद उनके और डिक्री-धारक के बीच कोई भी विवाद मध्यस्थता के लिए नहीं भेजा जा सकता था और इसलिए, वे बैंक को कुछ भी भुगतान करने के लिए उत्तरदायी नहीं थे। इसमें यह भी कहा गया है कि उन्हें मध्यस्थता कार्यवाही में पक्षकार नहीं बनाया गया था और उनकी पीठ पीछे यह कदम उठाया गया था। मध्यस्थ की नियुक्ति के संबंध में भी उन्हें कोई सूचना नहीं थी. दरअसल, उनके और बैंक के बीच विवाद को मध्यस्थता के लिए नहीं भेजा जा सकता था। 30 अप्रैल, 1959 से, जब सोसायटी ने प्रस्ताव पारित किया, जिसके तहत सुंदर सिंह, मोहिंदर सिंह और करतार सिंह ने अपने शेयर हस्तांतरित कर दिए थे, तो हस्तांतरितियों ने सोसायटी से देय ऋण के पुनर्भुगतान की पूरी देनदारी अपने ऊपर ले ली थी। आगे यह प्रस्तुत किया गया कि चूंकि सोसायटी परिसमापन में चली गई थी और एक परिसमापक नियुक्त किया गया था, इसलिए उनके खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं की जा सकती थी।

(4) डिक्री-धारक बैंक ने अपने उत्तर में कहा कि ऐसी आपत्तियाँ पहले भी निर्णय-डिबोटर्स द्वारा विभिन्न अवसरों पर उठाई गई थीं और उन्हें खारिज कर दिया गया था। यह दलील दी गई कि डिक्री वैध और निष्पादन योग्य थी और निष्पादन न्यायालय इसके पीछे नहीं जा सकता था। आपत्तिकर्ता अपनी सदस्यता का धोखाधड़ीपूर्ण हस्तांतरण करके इसके तहत अपने दायित्व से बच नहीं सकते थे और डिक्री धारक बैंक ने भी ऐसे किसी हस्तांतरण को कभी मान्यता नहीं दी। यह आगे था
कहा कि मध्यस्थता के संबंध में नोटिस निर्णय-देनदारों को विधिवत दिया गया था और इसलिए, मामला सही ढंग से मध्यस्थ को भेजा गया था।

(5) पार्टियों की दलील पर, निम्नलिखित मुद्दे तय किए गए: -

“ (1) क्या सुंदर सिंह, मोहिंदर सिंह और करतार सिंह 30 अप्रैल 1959 से निर्णय-ऋणी सोसायटी के सदस्य नहीं थे? यदि हां, तो किस प्रभाव से?

सुंदर सिंह, आदि बनाम सेंट्रल को-ऑपरेटिव बैंक लिमिटेड, करनाल, आदि। (पंडित, जे.)

(2) क्या आपत्ति याचिका में दिए गए कारणों से निर्णय-ऋणी पुरस्कार से बाध्य नहीं हैं?

(3) क्या विवाद को मध्यस्थ के पास नहीं भेजा जा सकता?

(4) क्या निर्णय-ऋणी सोसायटी के अन्य सदस्यों ने 30 अप्रैल, 1959 के बाद दायित्व ले लिया था?

(5) क्या निष्पादन आवेदन निर्णय-ऋणी के विरुद्ध इस आधार पर पोषणीय नहीं है कि निर्णय-ऋणी सोसायटी परिसमापन में चली गई है?

(6) क्या निर्णय-ऋणी सोसायटी के पास अपनी संपत्ति है और इसलिए, निष्पादन आवेदन निर्णय-ऋणी के विरुद्ध चलने योग्य नहीं है?

(7) क्या जिस समय प्रश्नगत ऋण लिया गया उस समय पियारा सिंह सदस्य नहीं थे? यदि हां तो इसका क्या प्रभाव होगा?

(8) क्या निर्णय-देनदारों या उनमें से किसी को उपरोक्त दलीलों में से कोई भी उठाने से रोका गया है?

(6) निष्पादन न्यायालय ने माना कि सुंदर सिंह, मोहिंदर सिंह और करतार सिंह, 30 अप्रैल, 1959 से निर्णय-देनदार सोसायटी के सदस्य नहीं रहे, जिस तारीख को सोसायटी द्वारा एक प्रस्ताव पारित किया गया था, जिसके द्वारा यह इन तीन व्यक्तियों को सोसायटी की सदस्यता से मुक्त कर दिया गया और: उनके शेयर मान सिंह, अजीत सिंह और अवतार सिंह को हस्तांतरित कर दिए गए, जिन्होंने उन व्यक्तियों की देनदारी ले ली। आगे यह माना गया कि पियारा सिंह प्रासंगिक समय पर सोसायटी का सदस्य था जब प्रश्न में ऋण लिया गया था, निर्णय-देनदारों या उनमें से किसी को यह दावा करने से नहीं रोका गया था कि वे डिक्रीटल राशि के लिए उत्तरदायी नहीं थे, कि यह सुझाव नहीं दिया गया कि इस मामले में विवाद को मध्यस्थता के लिए क्यों नहीं भेजा जा सकता है, परिसमापक की नियुक्ति किसी भी तरह से डिक्री-धारक बैंक को उसके उपचार के साथ आगे बढ़ने से नहीं रोकती है, जो उसके लिए उपलब्ध था। निर्णय-देनदार सोसायटी के किसी सदस्य या पूर्व सदस्य के खिलाफ, जो भुगतान करने की स्थिति में था, भले ही सोसायटी के पास अपनी बकाया संपत्ति थी, डिक्री-धारक किसी भी तरह से उन संपत्तियों के खिलाफ आगे बढ़ने और लागू नहीं करने के लिए बाध्य नहीं था। संपत्ति का बंधक, जिसे बैंक के

पास गिरवी रखा गया था, और डिक्री धारक किसी व्यक्तिगत सदस्य या सोसायटी के किसी पूर्व सदस्य के खिलाफ कार्रवाई कर सकता है, यदि उसे

कानून के तहत उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। यह भी माना गया कि बैंक को यह सूचित करने वाला कोई नोटिस नहीं दिया गया कि उक्त तीन व्यक्तियों को उनकी देनदारी से मुक्त कर दिया गया है और अन्य सदस्यों ने अपनी देनदारी अपने ऊपर ले ली है, जिसके परिणामस्वरूप बैंक ऐसा करने की स्थिति में नहीं है। अपनी जमा राशि या ऋण को वापस लेने का विकल्प जैसा कि अधिनियम की धारा 12(2) में विचार किया गया था।

निर्णय-देनदारों द्वारा भी यह स्वीकार किया गया था कि जिस ऋण से डिक्री संबंधित थी, वह उस समय अस्तित्व में था जब ये; आपत्तिकर्ता सोसायटी के सदस्य नहीं रहे। इस प्रकार, वे प्रश्नगत ऋणों के लिए उत्तरदायी थे। रिकॉर्ड पर यह साबित हुआ कि मध्यस्थता कार्यवाही के दौरान, पुरस्कार दिए जाने से पहले सोसायटी का प्रतिनिधित्व किया गया था। विद्वान न्यायाधीश के अनुसार, मध्यस्थता कार्यवाही के दौरान उपस्थित रहने के लिए आपत्तिकर्ताओं, जो सोसायटी के सदस्य थे, को कोई नोटिस देने की आवश्यकता नहीं थी। सोसायटी को नोटिस देना जरूरी था, जो
विधिवत दिया गया। इन निष्कर्षों पर आपत्तियों को खारिज कर दिया गया।

(7) उस फैसले के खिलाफ, सुंदर सिंह, मोहिंदर सिंह और करतार सिंह ने इस अदालत में निष्पादन प्रथम अपील दायर की। सबसे पहले, यही मामला गुरदेव सिंह जे के सामने आया, जिनके सामने अपीलकर्ताओं का मामला यह था कि वे 30 अप्रैल, 1959 से सोसायटी के सदस्य नहीं रह गए थे, क्योंकि इस आशय का एक प्रस्ताव पारित किया गया था। सोसायटी द्वारा सोसायटी के समापन से दो वर्ष से अधिक पहले, और उनका दायित्व समाप्त हो गया था। इस संबंध में अधिनियम की धारा 22 पर भरोसा रखा गया था। बैंक की ओर से कहा गया कि इस बदलाव की सूचना उसे दी जानी थी और ऐसे नोटिस के बिना अपीलकर्ताओं को बर्खास्त नहीं किया गया; ऋण के लिए उनकी देनदारी से. इस संबंध में अधिनियम की धारा 12 का संदर्भ दिया गया था। विद्वान न्यायाधीश के अनुसार, मामले का भाग्य अधिनियम की धारा 12 और 22 की व्याख्या पर आधारित था और चूंकि इस बिंदु पर कोई प्रत्यक्ष अधिकार नहीं था और अधिनियम की धारा 12(1) को खुशी से लिखा नहीं गया था। और क्योंकि उस प्रावधान की व्याख्या काफी महत्वपूर्ण थी, क्योंकि सहकारी समितियों और उनके लेनदारों के बीच विवाद अक्सर उठते रहते थे, उन्होंने सोचा कि यह वांछनीय है कि पिछले सदस्यों के दायित्व के संबंध में स्थिति स्पष्ट की जाए। उन्होंने तदनुसार 1 दिसंबर, 1969 को मामले को एक बड़ी पीठ के पास भेज दिया, इस तरह मामला हमारे सामने रखा गया है।

सुंदर सिंह, आदि बनाम सेंट्रल को-ऑपरेटिव बैंक लिमिटेड, करनाल, आदि। (पंडित, जे.)

(8) अपीलकर्ताओं द्वारा उठाया गया मुख्य तर्क यह था कि वे 30 अप्रैल, 1959 से सोसायटी के सदस्य नहीं रह गए थे, और तदनुसार, उनके और बैंक के बीच कोई भी विवाद मध्यस्थता के लिए नहीं भेजा जा सकता था और वे नहीं कर सकते थे। इसलिए, उन्हें सोसायटी के खिलाफ पुरस्कार के तहत उत्तरदायी बनाया जाना चाहिए, खासकर तब जब उन्हें व्यक्तिगत रूप से ऐसी किसी भी कार्यवाही में शामिल नहीं किया गया था, जो उनकी पीठ के पीछे ली गई थी और यहां तक कि मध्यस्थ की नियुक्ति भी उन्हें बिना सूचना दिए की गई थी।

(9) अपीलकर्ताओं द्वारा यह स्वीकार किया गया कि धारा 55(एल)(डी) के तहत अधिनियम के अनुसार, एक सोसायटी और किसी अन्य सहकारी समिति के बीच विवाद समाज को मध्यस्थता के लिए भेजा जा सकता है। लेकिन इस बात पर ज़ोर दिया गया कि बैंक, जो कि, अधिनियम के तहत, माना जाता है, एक सहकारी समिति थी, और अपीलकर्ताओं, जो बैंक से सोसायटी द्वारा लिए गए ऋण के ज़मानतदार थे, के बीच विवाद को इस तरह से संदर्भित नहीं किया जा सकता था और इसलिए , जहां तक उनका संबंध है, यह पुरस्कार अधिकार क्षेत्र के बिना था और उनके खिलाफ लागू नहीं किया जा सकता था, खासकर जब उन्हें मध्यस्थता कार्यवाही में पक्षकार नहीं बनाया गया था, जो उनकी पीठ पीछे आयोजित की गई थी।

(10) जैसा कि मैंने पहले ही कहा है, दिनांक 18 अप्रैल 1956 के पंजीकृत हाइपोथिकेशन डीड के आधार पर सोसायटी द्वारा उस डीड को विधिवत निष्पादित कर तथा उसमें उल्लिखित संपत्ति को बैंक के पास गिरवी रखकर बैंक से ऋण लिया गया था। सोसायटी ने कुछ भुगतान तो किए, लेकिन चूंकि उसने ऋण की शेष राशि नहीं चुकाई, इसलिए इस मामले को लेकर विवाद पैदा हो गया। मेरी राय में, इस निष्कर्ष से बचा नहीं जा सकता कि विवाद एक था और अविभाज्य था। सोसायटी ने कर्ज लिया था और बैंक को उससे इसकी वसूली करनी थी। हाइपोथिकेशन डीड के द्वारा, जिसके आधार पर ऋण लिया गया था, अपीलकर्ताओं ने, जो सोसायटी के सदस्य भी थे, अपनी संपत्ति भी गिरवी रख दी थी। यह मामला, यानी, बैंक और सोसायटी के बीच विवाद, अधिनियम की धारा 55(1)(डी) के तहत मध्यस्थता के लिए सही ढंग से भेजा गया था। मध्यस्थ को यह तय करना था कि (ए) क्या बंधक विलेख के आधार पर ऋण वास्तव में सोसायटी द्वारा लिया गया था; (बी) क्या सोसायटी ने उक्त ऋण वापस कर दिया है और यदि हां, तो किस हद तक; (सी) सोसायटी पर बैंक को वास्तव में कितनी राशि बकाया थी और (डी) सोसायटी से उक्त ऋण की वसूली किस तरीके से की जानी थी। ये सभी ऐसे मामले थे, जो आपस में जुड़े हुए थे और विवाद सिर्फ एक था, सोसायटी द्वारा बैंक से लिए गए कर्ज को लेकर. मध्यस्थ ने इस मामले पर विचार किया और 22 दिसंबर, 1961 को अपना फैसला सुनाया। वह इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि सोसायटी को मूलधन के रूप में 14,736.87 रुपये, ब्याज के रूप में 929.57 रुपये और लागत के रूप में 1,566.56 रुपये यानी कुल मिलाकर 17,230 रुपये का भुगतान करना होगा। बैंक में। इसलिए, यह निर्देश दिया गया कि मूल राशि की प्राप्ति तक सोसायटी द्वारा बैंक को यह राशि 6 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से ब्याज के साथ भुगतान की जाए।

यदि उक्त राशि का भुगतान नहीं किया गया था, तो इसकी वसूली सिविल न्यायालय के माध्यम से या सोसायटी की सभी संपत्ति की बिक्री से की जाएगी, जिसे विशेष रूप से ऋण की संतुष्टि के लिए गिरवी रखा गया था और जिसे संलग्न अनुसूची में विस्तार से दिखाया गया था। पुरस्कार, या सोसायटी या उसके सदस्यों से संबंधित किसी अन्य संपत्ति का, या सोसायटी के सदस्यों की गिरफ्तारी से। हाइपोथिकेशन डीड से यह स्पष्ट है कि जो संपत्ति गिरवी रखी गई थी, वह उसमें उल्लिखित जमानतदारों की थी, जो सोसायटी के सदस्य भी थे। जहां तक सोसायटी की संपत्ति का सवाल है तो डीड में कहा गया था कि जो ट्रक लोन लेकर खरीदे जाएंगे, उन्हें भी बंधक माना जाएगा। इसका मतलब यह है कि हाइपोथेकेशन डीड की तारीख पर ऋण की संतुष्टि के लिए विशेष रूप से गिरवी रखी गई संपत्ति उसमें उल्लिखित व्यक्तियों की थी, जिन्होंने वास्तव में उक्त डीड पर हस्ताक्षर भी किए थे। पुरस्कार ने यह स्पष्ट कर दिया कि यदि सोसायटी ने उक्त राशि नहीं चुकाई, तो यह उस संपत्ति से वसूल की जाएगी, जिसे गिरवी रखा गया था, और बंधक-विलेख को पुरस्कार के लिए एक अनुसूची बना दिया गया था। इसलिए, यह स्पष्ट था कि डिक्रीटल राशि उसी संपत्ति से वसूल की जानी थी, यदि, निश्चित रूप से, सोसायटी ने राशि का भुगतान नहीं किया था। यदि अपीलकर्ताओं को फैसले के खिलाफ कोई आपत्ति थी, अर्थात्, उन्हें इसमें पक्ष नहीं बनाया गया था या मध्यस्थता की कार्यवाही उनकी पीठ पीछे आयोजित की गई थी या मध्यस्थ को बिना किसी अधिनियम के नियुक्त किया गया था, उन्हें नोटिस दिया गया था, तो उन्हें इसमें जाना चाहिए था अधिनियम की धारा 68 (i) (एच) के तहत उस पुरस्कार के खिलाफ अपील करें, जिसमें कहा गया है: - "धारा 56 के तहत किए गए किसी भी निर्णय या पुरस्कार के खिलाफ इस धारा के तहत अपील की जाएगी।"

(11) यह कहा जा सकता है कि किसी विवाद को धारा 55 के तहत मध्यस्थता के लिए भेजा जाता है और अधिनियम की धारा 56 के तहत एक पुरस्कार दिया जाता है। किसी पुरस्कार से व्यथित पक्ष के लिए अधिनियम द्वारा एक विशिष्ट उपाय प्रदान किया गया है। हालाँकि, सिविल न्यायालयों का क्षेत्राधिकार अधिनियम की धारा 82 के तहत वर्जित है। अधिनियम की धारा 82(3) कहती है:

"इस अधिनियम में दिए गए प्रावधानों को छोड़कर, इस अधिनियम के तहत दिए गए किसी भी आदेश, निर्णय या पुरस्कार पर किसी भी आधार पर किसी भी न्यायालय में सवाल नहीं उठाया जाएगा।"

(12) इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि चूंकि अपीलकर्ता पुरस्कार के खिलाफ अपील में नहीं गए, इसलिए यह उनके लिए अंतिम हो गया और किसी भी आधार पर सिविल कोर्ट में इस पर सवाल नहीं उठाया जा सका।

सुंदर सिंह, आदि बनाम सेंट्रल को-ऑपरेटिव बैंक लिमिटेड, करनाल, आदि। (पंडित, जे.)

अधिनियम की धारा 82(3) के तहत इस संबंध में सिविल न्यायालयों का क्षेत्राधिकार विशेष रूप से वर्जित है ।

(13) अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील द्वारा यह तर्क दिया गया कि मौजूदा मामले में, पुरस्कार क्षेत्राधिकार के बिना होने के कारण, सिविल न्यायालयों के पास उनके द्वारा उठाए गए प्रश्न पर निर्णय लेने की शक्ति होगी।

(14) सिविल न्यायालयों का क्षेत्राधिकार केवल तभी होगा जब मध्यस्थ के पास इस मामले को तय करने के लिए अंतर्निहित क्षेत्राधिकार का अभाव हो। लेकिन, यह समझ में नहीं आ रहा है कि यह फैसला क्षेत्राधिकार के बिना कैसे था और मध्यस्थ के पास इस विवाद को तय करने के लिए अंतर्निहित क्षेत्राधिकार का अभाव था।

(15) एक न्यायालय के क्षेत्राधिकार की धारणा का विश्लेषण करते समय, ह्रदय नाथ में कलकत्ता उच्च न्यायालय की पांच न्यायाधीशों की पूर्ण पीठ में कार्यवाहक सी.जे. सर आशुतोष मुखर्जी; रॉय बनाम राम चंद्र बर्मा सरमा (1) ने कहा:

"किताबों में मामलों की जांच से "क्षेत्राधिकार" शब्द को परिभाषित करने के कई प्रयासों का पता चलता है, जिसे "कानून और तथ्य के मुद्दों को सुनने और निर्धारित करने की शक्ति" कहा गया है;" "वह अधिकार जिसके द्वारा न्यायिक अधिकारी संज्ञान लेते हैं और कारणों का निर्णय लेते हैं;" "कानूनी विवाद को सुनने और निर्णय लेने का अधिकार;" "किसी मुकदमे के पक्षकारों के बीच विवाद में विषय-वस्तु को सुनने और निर्धारित करने और उन पर निर्णय लेने या किसी न्यायिक शक्ति का प्रयोग करने की शक्ति;" "न्यायालय के समक्ष मुद्दों को सुनने, निर्धारित करने और निर्णय सुनाने की शक्ति;" "वह शक्ति या अधिकार जो विधायिका द्वारा पार्टियों के बीच कारणों को सुनने और निर्धारित करने और निर्णयों को प्रभावी बनाने के लिए न्यायालय को प्रदान किया जाता है;" "तथ्यों की जांच करने, कानून लागू करने, निर्णय सुनाने और उसे क्रियान्वित करने की शक्ति।" * * * * * * * न्यायालय का यह क्षेत्राधिकार विभिन्न परिस्थितियों के कारण योग्य या प्रतिबंधित हो सकता है। इस प्रकार, विषय-वस्तु के स्थान, मूल्य और प्रकृति के संदर्भ में क्षेत्राधिकार पर विचार करना पड़ सकता है। अधिकरण की शक्ति का प्रयोग परिभाषित क्षेत्रीय सीमाओं के भीतर किया जा सकता है। इसका संज्ञान निर्धारित मूल्य के विषय-वस्तुओं तक ही सीमित हो सकता है।

सुंदर सिंह, आदि बनाम सेंट्रल को-ऑपरेटिव बैंक लिमिटेड, करनाल, आदि। (पंडित, जे.)

---

(1) ए.टी.आर 1921 कैल. 34.

यह एक निर्दिष्ट चरित्र के विवादों से निपटने में सक्षम हो सकता है, उदाहरण के लिए, वसीयतनामा या वैवाहिक कारण, सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए भूमि का अधिग्रहण, मकान मालिकों और किरायेदारों के बीच अधिकारों का रिकॉर्ड। क्षेत्रीय क्षेत्राधिकार, आर्थिक क्षेत्राधिकार और विषय-वस्तु के क्षेत्राधिकार में यह वर्गीकरण स्पष्ट रूप से एक मौलिक चरित्र का है। ऐसे क्षेत्राधिकार को देखते हुए, हमें क्षेत्राधिकार के प्रयोग को क्षेत्राधिकार के अस्तित्व से अलग करने में सावधानी बरतनी चाहिए; क्योंकि धारणा और न्यायक्षेत्र के प्रयोग में वैधानिक आवश्यकताओं का अनुपालन करने में विफलता के परिणाम मौलिक रूप से भिन्न हैं। किसी कारण का निर्णय करने का अधिकार है, न कि उसमें दिए गए निर्णय का क्षेत्राधिकार किससे बनता है; और जब व्यक्ति और विषय वस्तु का क्षेत्राधिकार होता है, तो मामले में उत्पन्न होने वाले अन्य सभी प्रश्नों का निर्णय उस क्षेत्राधिकार का प्रयोग मात्र होता है। * * * *. लेकिन क्षेत्राधिकार के अस्तित्व और क्षेत्राधिकार के प्रयोग के बीच अंतर को हमेशा ध्यान में नहीं रखा गया है और यह आधार कभी-कभी भ्रम पैदा करता है।

♦ * * ♦ * * * *

चूंकि अधिकार क्षेत्र सुनने और निर्णय लेने की शक्ति है, इसलिए यह न तो उस शक्ति के प्रयोग की नियमितता पर या दिए गए निर्णय की शुद्धता पर निर्भर करता है, क्योंकि निर्णय लेने की शक्ति आवश्यक रूप से गलत निर्णय लेने की शक्ति के साथ-साथ अपने साथ रखती है। ठीक है. इस प्रस्ताव के लिए एक प्राधिकारी के रूप में मल्कर्जुन बनाम में लॉर्ड हॉबहाउस के प्रसिद्ध कथन का संदर्भ दिया जा सकता है। नरहाई (2). "एक न्यायालय के पास "गलत के साथ-साथ सही" का निर्णय करने का अधिकार क्षेत्र है। यदि यह गलत निर्णय लेता है, तो गलत पक्ष केवल मामलों को सही करने के लिए कानून द्वारा निर्धारित मार्ग अपना सकता है; और यदि वह रास्ता नहीं अपनाया गया, तो निर्णय, चाहे कितना भी गलत हो, परेशान नहीं किया जा सकता। लॉर्ड हॉबहाउस ने फिर कहा कि यद्यपि यह सच है कि न्यायालय ने अपनाई गई प्रक्रिया का पालन करने में एक दुखद गलती की है, फिर भी ऐसा करने में न्यायालय अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग कर रहा है; और इस तरह की त्रुटि को न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को नष्ट करने के रूप में मानने से कानून के प्रशासन में बड़ा भ्रम पैदा होगा।

सुंदर सिंह, आदि बनाम सेंट्रल को-ऑपरेटिव बैंक लिमिटेड, करनाल, आदि। (पंडित, जे.)

---

(2) आई.एल.आर. (1900) 25 बम। 337.

यह विचार कि क्षेत्राधिकार इसके प्रयोग के तरीके से पूरी तरह से स्वतंत्र है, और इसमें न्यायालय में प्रस्तुत तथ्यों पर किसी भी तरह से निर्णय लेने की शक्ति शामिल है, सिद्धांत रूप में स्पष्ट रूप से अच्छी तरह से स्थापित है, और इसे अन्यत्र मान्यता दी गई है और लागू किया गया है: * * * किसी मामले की सुनवाई और निर्धारण करने के न्यायालय के अधिकार क्षेत्र और उस क्षेत्राधिकार के प्रयोग में ऐसे न्यायालय की गलत कार्रवाई के बीच स्पष्ट अंतर है। पहले में कार्य करने की शक्ति शामिल होती है, जबकि बाद में उस विशेष तरीके से कार्य करने का अधिकार शामिल होता है जिसमें न्यायालय कार्य करता है। निर्णय की त्रुटि और सत्ता के हड़पने के बीच की सीमा यह है: पूर्व को एक निश्चित निश्चित समय के भीतर अपीलीय न्यायालय द्वारा उलटा किया जा सकता है और इसलिए, केवल शून्यकरणीय है, बाद वाला पूर्ण शून्यता है। जब पक्षकार न्यायालय के समक्ष होते हैं और किसी विवाद को प्रस्तुत करते हैं जिस पर निर्णय लेने का अधिकार न्यायालय के पास है, तो कोई निर्णय आवश्यक रूप से सही नहीं होता है, लेकिन उस प्रश्न के लिए उपयुक्त होता है, जो न्यायिक शक्ति या क्षेत्राधिकार का प्रयोग होता है। जहां तक क्षेत्राधिकार का सवाल है, यह पूरी तरह से अप्रासंगिक है कि किसी विशेष प्रश्न पर निर्णय सही होगा या गलत। यदि यह माना जाता कि किसी न्यायालय के पास केवल सही निर्णय देने का क्षेत्राधिकार है, तो हर बार जब उसने कोई गलत निर्णय या निर्णय दिया, तो न्यायालय क्षेत्राधिकार के बिना हो जाएगा और निर्णय स्वयं शून्य हो जाएगा। ऐसा है कानून नहीं, और इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि निर्णय के लिए प्रस्तुत विशेष प्रश्न क्या हो सकता है, चाहे वह न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से संबंधित हो या मुकदमेबाजी करने वाले पक्षों के मूल अधिकारों को प्रभावित करता हो, यह नहीं माना जा सकता है कि निर्णय या निर्णय स्वयं अधिकार क्षेत्र के बिना है या न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से बाहर है। निर्णय गलत हो सकता है, लेकिन अभाव के कारण इसे रद्द नहीं किया जा सकता क्षेत्राधिकार।"

(16) तब यह कहा गया था कि सोसायटी और बैंक के बीच विवाद को मध्यस्थ के पास भेजा जा सकता है, लेकिन बैंक और सोसायटी के सदस्यों के बीच विवाद, जो ज़मानतदार थे और हाइपोथिकेशन डीड पर हस्ताक्षर किए थे, ऐसा नहीं हो सका। निर्दिष्ट।

सुंदर सिंह, आदि बनाम सेंट्रल को-ऑपरेटिव बैंक लिमिटेड, करनाल, आदि। (पंडित, जे.)

(17) मैंने पहले ही कहा है, विवाद एक और अविभाज्य था और इसे विभाजित नहीं किया जा सकता था और यदि अपीलकर्ताओं द्वारा हाइपोथीकेशन डीड और पुरस्कार पर की गई व्याख्या को स्वीकार कर लिया जाता तो इसके परिणाम असामान्य होते।

उस मामले में, इसका मतलब यह होगा कि मध्यस्थ, माना जाता है, बैंक और सोसायटी के बीच विवाद का फैसला कर सकता है, जबकि सिविल कोर्ट बैंक और अपीलकर्ताओं-ज़मानतदारों के बीच तथाकथित विवाद का फैसला करेगा, जिन्होंने हाइपोथेकेशन डीड पर हस्ताक्षर किए थे। आइए अब हम इस व्याख्या के परिणामों की जाँच करें।

(18) प्रथम दृष्टया, बैंक और सोसायटी के बीच विवाद में मध्यस्थ को क्या निर्णय लेना है? क्या मध्यस्थ को उस बंधक विलेख को नहीं देखना है जिसके आधार पर बैंक सोसायटी को ऋण देने के लिए सहमत हुआ था? क्या ऋण का बंटवारा किया जा सकता है? माना कि यदि डीड में उल्लिखित संपत्ति बैंक के पास गिरवी न होती तो ऋण नहीं दिया जाता। मध्यस्थ को यह तय करना था कि सोसायटी को ऋण प्राप्त हुआ या नहीं, इसका कितना हिस्सा वापस चुकाया गया और सोसायटी से कितना वसूल किया जाना बाकी है और किस तरीके से वसूली की जानी है। यह नहीं कहा जा सकता कि ये सभी बातें एक विवाद नहीं थीं और जाहिर तौर पर यह बैंक और सोसायटी के बीच था। इसका निर्णय करते समय मध्यस्थ को यह कहना था कि सोसायटी को इतनी राशि प्राप्त हुई थी, उसमें से इतनी राशि वापस कर दी गई है तथा बकाया राशि इतनी अधिक है तथा हाइपोथिकेशन की शर्तों के अनुसार इसकी वसूली की जानी है। विलेख, विशेष रूप से गिरवी रखी गई संपत्तियों से, यदि सोसायटी उसे वापस नहीं करती है। अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील के तर्क के अनुसार भी, यह एक वैध पुरस्कार होगा।

(19) दूसरी ओर, यदि जमानतदारों और बैंक के बीच विवाद के मामले की सुनवाई सिविल कोर्ट द्वारा की जानी थी, तो स्वाभाविक रूप से यह सवाल उठेगा कि सिविल कोर्ट को क्या निर्धारित करना था? सिविल कोर्ट में, निर्णय-देनदार, अर्थात्, सोसायटी को पक्षकार बनाना पड़ा। सोसायटी की कुछ संपत्ति, जो लिए गए ऋण से प्राप्त की जानी थी, गिरवी रखी हुई मानी गई। उस क्षमता में सोसायटी को भी गिरवी रखने वालों में से एक के रूप में पक्षकार बनाना पड़ा। दूसरे शब्दों में, सोसायटी और जमानतदार फिर से अदालत के समक्ष होंगे और वहां भी

सुंदर सिंह, आदि बनाम सेंट्रल को-ऑपरेटिव बैंक लिमिटेड, करनाल, आदि। (पंडित, जे.)

जमानतदार यह दलील दे सकते हैं कि बैंक ने सोसायटी को पूरा ऋण नहीं चुकाया है या सोसायटी ने जितना आरोप लगाया था, उससे अधिक चुकाया है। फोरनीयर, या कि बैंक को पहले अपनी संपत्ति का निपटान करके सोसायटी के खिलाफ अपने उपचारों को समाप्त करना चाहिए, जिसे उसने ऋण के साथ अर्जित किया होगा, या कि उन्होंने गलतफहमी के तहत बंधक विलेख निष्पादित किया था, आदि, आदि। तब भी वही प्रश्न होंगे न्यायालय द्वारा निर्धारित किया जायेगा. इसलिए, इसका परिणाम यह होगा कि दो असंगत आदेश हो सकते हैं - एक मध्यस्थ द्वारा दिया गया और दूसरा सिविल न्यायालय द्वारा।

अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील की दलील के अनुसार, पहला एक वैध पुरस्कार होगा। यदि अपीलकर्ताओं के वकील का तर्क सही था, तो सिविल कोर्ट द्वारा पारित आदेश भी कानून के अनुरूप होगा। कानून या हाइपोथिकेशन डीड के निष्पादकों की ऐसी मंशा नहीं हो सकती है। जैसा कि मैंने पहले ही कहा है, यह कल्पना करना संभव नहीं है कि इस विलेख के आधार पर, दो विवाद उत्पन्न हुए थे - एक बैंक और सोसायटी के बीच और दूसरा बैंक और ज़मानतदारों के बीच, पहला अधिनियम के तहत था। मध्यस्थता के संदर्भ में और सिविल न्यायालय द्वारा अन्य संज्ञेय। इसलिए, यह निष्कर्ष अटल है कि विवाद एक था और अधिनियम के तहत निर्णय योग्य था। किसी भी प्रकृति की कोई भी आपत्ति, जैसे, अपीलकर्ताओं को पक्ष नहीं बनाया जाना, मध्यस्थता की कार्यवाही उनकी पीठ पीछे आयोजित की गई, मध्यस्थ को बिना किसी नोटिस के नियुक्त किया गया, धारा के तहत पुरस्कार के खिलाफ अपील के माध्यम से उठाया जाना चाहिए था अधिनियम की धारा 68(एल)(एच). अधिनियम की धारा 82 के आधार पर, अधिनियम के तहत दिए गए किसी भी आदेश, निर्णय या पुरस्कार पर किसी भी आधार पर किसी भी न्यायालय में सवाल नहीं उठाया जा सकता है। अपीलकर्ताओं द्वारा उल्लिखित सभी आपत्तियाँ, बिना अधिकार क्षेत्र के पुरस्कार प्रदान कर सकती हैं। यदि इन आपत्तियों को स्वीकार भी कर लिया जाए, तो अधिक से अधिक इतना ही कहा जा सकता है कि निर्णय कानून के विपरीत था या मध्यस्थ द्वारा उचित प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया था, लेकिन यह अधिकार क्षेत्र के बिना निर्णय नहीं देगा। ऐसा केवल तभी हो सकता है, जैसा कि मैंने पहले ही कहा है, यदि मध्यस्थ के पास विवाद की सुनवाई के लिए अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र का अभाव है। यहां ऐसा मामला नहीं है.

(20) धौंकल बनाम मान कौरी और अन्य (3) में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के फैसले में। मेहर सिंह सी.जे., जिन्होंने न्यायालय का निर्णय तैयार किया, ने माना कि किसी पक्ष की अनुपस्थिति में और उसकी बात सुने बिना दिया गया आदेश रद्द करने योग्य है और शून्य नहीं है और इसे रद्द कर दिया जाना चाहिए या अलग रखा जाना चाहिए। यह तब तक प्रभावी रहेगा जब तक कि जानकारी के बाद उस पक्ष ने इसे कानून के अनुसार हटा नहीं दिया। इस मामले से निपटते समय, लीम न्यायाधीश ने कहा:

"हेल्सबरी के इंग्लैंड के कानून, तीसरे संस्करण, खंड 30, पृष्ठ 719 पर, यह कहा गया है कि 'यदि प्राकृतिक न्याय के नियमों का पालन नहीं किया जाता है, तो निर्णय रद्द करने योग्य होगा, बिल्कुल शून्य नहीं', और यह कथन डाइम्स पर आधारित है ग्रैंड जंक्शन कैनाल प्रोपराइटर (4),

सुंदर सिंह, आदि बनाम सेंट्रल को-ऑपरेटिव बैंक लिमिटेड, करनाल, आदि। (पंडित, जे.)

---

(3) आईएलआर 02 पीबी और घंटा 220 =1970 पी.जे.आर. 402
जिसमें लॉर्ड चांसलर के डिक्री को व्यक्तिगत हित के आधार पर चुनौती दी गई थी और इस प्रकार पूर्वाग्रह के कारण न्यायाधीश के रूप में बैठे हुए तर्क यह था कि डिक्री पूरी तरह से क्षेत्राधिकार के बिना और पूरी तरह से थी शून्य, लेकिन यह माना गया कि यह शून्य करने योग्य था और परिणामस्वरूप इसे उलट दिया जाना चाहिए और पूरी तरह से शून्य नहीं होना चाहिए।

फिर से हेल्सबरी के इंग्लैंड के कानून, खंड II, पृष्ठ 66 पर, यह कहा गया है कि 'अवर न्यायाधिकरण का एक निर्णय रद्द कर दिया जाएगा यदि जिस पक्ष के खिलाफ यह दिया गया है उसे सुनवाई की सूचना नहीं दी गई थी*, और यह इस पर आधारित है आर्थर जॉन स्पैकमैन बनाम द प्लस्टेड डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ऑफ वर्क्स में हाउस ऑफ लॉर्ड्स का निर्णय।

(5), जिसमें, पृष्ठ 240 पर, यह देखा गया था- "इसमें कोई संदेह नहीं है कि जिस व्यक्ति को निर्णय लेना है कि उसे कैसे आगे बढ़ना है, उसके विशेष प्रावधानों के अभाव में, कानून की पर्याप्त आवश्यकताओं से अधिक कुछ नहीं होगा।" न्याय का उल्लंघन नहीं किया जाएगा. वह शब्द के उचित अर्थ में न्यायाधीश नहीं है; लेकिन उसे पक्षों को अपने सामने सुनने और अपना मामला और अपना दृष्टिकोण बताने का अवसर देना चाहिए। जब वह मामले को आगे बढ़ाएंगे तो उन्हें नोटिस देना होगा, और उसे ईमानदारी और निष्पक्षता से कार्य करना चाहिए और किसी अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों के आदेश के तहत नहीं, जिन्हें कानून द्वारा अधिकार नहीं दिया गया है। किसी भी प्रकार की कोई गड़बड़ी नहीं होनी चाहिए. यदि न्याय के सार के विपरीत ऐसा कुछ किया गया तो क़ानून के अर्थ के अंतर्गत कोई निर्णय नहीं होगा।" * * * ** *. यह देखा जाएगा कि इनमें से किसी भी मामले में अनुपस्थिति में या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के विपरीत दिए गए आदेश को शून्य या निरर्थक नहीं माना गया है, इस अर्थ में कि यह कानून में मौजूद नहीं है, बल्कि इसे रद्द करने योग्य माना गया है। या अप्रभावी या अलग रखे जाने और रद्द किए जाने के लिए खुला है। * * * * इत्ताविरा मथाई बनाम वर्की वर्की (6) में, उनके आधिपत्य ने माना कि "जहां एक न्यायालय के पास विषय-वस्तु पर अधिकार क्षेत्र है और पार्टी एक डिक्री पारित करती है, उसे अमान्य नहीं माना जा सकता है और बाद की मुकदमेबाजी में भी इसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है।" यदि मुकदमा समय से वर्जित था।

सुंदर सिंह, आदि बनाम सेंट्रल को-ऑपरेटिव बैंक लिमिटेड, करनाल, आदि। (पंडित, जे.)

(4) (1852) 3 एच. एल. केस 759.
(5) (1885) 10 ए.सी. 229।
(6) ए.आई.आर. 1964 एस.सी. 907.

यदि मुकदमा समय से बाधित था और फिर भी न्यायालय ने उस पर फैसला सुनाया, तो न्यायालय एक अवैधता करेगा और इसलिए, पीड़ित पक्ष इसके खिलाफ अपील करके डिक्री को रद्द कराने का हकदार होगा। लेकिन यह अच्छी तरह से तय है कि मुकदमे की विषय-वस्तु और उसके पक्षों पर अधिकार क्षेत्र रखने वाला न्यायालय, भले ही वह सही निर्णय लेने के लिए बाध्य है, फिर भी वह गलत निर्णय ले सकता है, और भले ही उसने गलत निर्णय लिया हो, वह ऐसा कुछ नहीं करेगा जिसे करने का उसके पास कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है। इसका विषय-वस्तु पर अधिकार क्षेत्र था और इसका पक्ष पर भी अधिकार क्षेत्र था और इसलिए, केवल इसलिए कि इसने मुकदमे में एक महत्वपूर्ण मुद्दे को तय करने में त्रुटि की, यह नहीं कहा जा सकता कि इसने अपने अधिकार क्षेत्र से परे काम किया है। न्यायालयों को सही या गलत का निर्णय करने का अधिकार है और भले ही वे गलत निर्णय लेते हैं, उनके द्वारा दिए गए आदेशों को अमान्य नहीं माना जा सकता है। यह सच है कि परिसीमा अधिनियम की धारा 3 अनिवार्य है और यह न्यायालय का कर्तव्य है कि वह इस प्रावधान पर ध्यान दे और इसे प्रभावी बनाए, भले ही अभिवचनों में परिसीमा के बिंदु का उल्लेख नहीं किया गया हो। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि कोर्ट कहां है अपना कर्तव्य निभाने में विफल रहता है, वह अधिकार क्षेत्र के बिना कार्य करता है। यदि यह अपना कर्तव्य निभाने में विफल रहता है, तो यह केवल कानूनी त्रुटि करता है और कानून की त्रुटि को केवल सिविल प्रक्रिया संहिता में निर्धारित तरीके से ही ठीक किया जा सकता है। यदि पीड़ित पक्ष उस त्रुटि को ठीक करने के लिए उचित कदम नहीं उठाता है, तो गलत डिक्री मान्य होगी और नहीं होगी शून्यता के आधार पर चुनौती देने के लिए तैयार। * ** *. जैसा कि पहले ही बताया गया है, शून्यता का प्रश्न वहां उठता है जहां अधिकार क्षेत्र की कमी होती है और हाउस ऑफ लॉर्ड्स के समक्ष डाइम्स के मामले (4) में यही तर्क था, लेकिन निष्कर्ष यह था कि प्राकृतिक सिद्धांतों में से एक का उल्लंघन न्याय, उस मामले में एक न्यायाधीश द्वारा व्यक्तिगत हित के साथ की गई डिक्री, क्षेत्राधिकार को बाहर नहीं करती है और डिक्री को शून्य कर देती है, बल्कि यह शून्यकरणीय थी। अंतर, जहां तक मैं देख पाया हूं, वह यह है कि जहां कोई डिक्री या आदेश अमान्य है, वह गैर-स्थायी है, और उसे पूरी तरह से नजरअंदाज किया जा सकता है, लेकिन, जब वह अमान्य है, तो पीड़ित पक्ष को छुटकारा पाने के लिए आगे बढ़ना होगा यह कानून के अनुसार है, और जहां वह ऐसा करने में विफल रहता है, यह अधिकार क्षेत्र के भीतर रहता है और पार्टी तब यह कहने की स्थिति में नहीं होती है कि यह गैर-स्थायी है।

सुंदर सिंह, आदि बनाम सेंट्रल को-ऑपरेटिव बैंक लिमिटेड, करनाल, आदि। (पंडित, जे.)

(21) यह उल्लेख किया जा सकता है कि अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील किसी भी न्यायालय के एक भी निर्णय का हवाला नहीं दे सके जिसमें वर्तमान के समान परिस्थितियों में पुरस्कार दिया गया था
कभी भी अधिकार क्षेत्र के बिना और निरर्थक माना जाता है।

(22) यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि ऋण अप्रैल 1956 में लिया गया था और पुरस्कार 1961 में दिया गया था और अब तक बैंक सोसायटी या विलेख के निष्पादकों से इतनी बड़ी राशि वसूल नहीं कर पाया है, जिन्होंने पिछले 15-16 वर्षों से किसी न किसी आधार पर भुगतान टाल रहे हैं।

(23) ऊपर जो कहा गया है, उसके मद्देनजर, यह अपील विफल हो जाती है और खारिज कर दी जाती है। हालाँकि, इस मामले की परिस्थितियों में, पक्ष
उन्हें अपनी लागत स्वयं वहन करने के लिए छोड़ दिया गया है।

ढिल्लों, जे.- मैं सहमत हूं।

B. S. G.

अवीकरण :

स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णयर्णवादी के सीमित उपयोग के लि एहैताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सकें और किसी अन्य उद्देश्य के लि ए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए निर्णयर्ण का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणित होगा और निष्पादन और कार्यावअन्य के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा।

सुंदर सिंह, आदि बनाम सेंट्रल को-ऑपरेटिव बैंक लिमिटेड, करनाल, आदि। (पंडित, जे.)

वसुंधरा राव
प्रशिक्षुन्यायिक अधिकारी,
हरियाणा